

## स्वामी विवेकानन्द के दार्शनिक विचार : शिक्षा के संबंध में

डॉ० संतोष कुमार झा  
एम० ए०, पी०-एच० डी०  
दर्शनशास्त्र विभाग  
ल० ना० मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

स्वामी विवेकानन्दके अनुसार शिक्षा समस्त सामाजिक दुर्गुणों का रामबाण इलाज है। "जो शिक्षा साधारण व्यक्ति को जीवन-संग्राम में समर्थ नहीं बना सकती, जो मनुष्य में चरित्र-बल, परहित-भावना तथा सिंह के समान साहस नहीं ला सकती, वह भी कोई शिक्षा है? जिस शिक्षा के द्वारा अपने जीवन में अपने पैरों पर खड़ा हुआ जा सकता है, वही शिक्षा है। आजकल के इन सब स्कूल-कॉलेजों में पढ़कर तुम लोग न जाने अजीर्ण के रोगियों की कैसी एक जमात तैयार कर रहे हो। केवल मशीन की तरह काम कर रहे हो।"<sup>1</sup>

"समस्त शिक्षण तथा प्रशिक्षण का एकमात्र उद्देश्य मनुष्य-निर्माण होना चाहिए।" कहा भी है- यथा खरश्चन्दनभारवाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य- अर्थात् "वह गधा, जिसके उपर चन्दन की लकड़ियों का बोझ लाद दिया गया हो, बोझ की ही बात जान सकता है, चन्दन के महत्व को वह नहीं समझ सकता।" यदि तरह तरह की सूचनाओं का संग्रह करना ही शिक्षा कहलाता, तब तो पुस्तकालय संसार में सर्वश्रेष्ठ महापुरुष और विश्वकोष ही महान ऋषि बन जाते।"<sup>2</sup>

शिक्षा से मेरा तात्पर्य आधुनिक प्रणाली की शिक्षा से नहीं, वरन् ऐसी शिक्षा से है, जो सकारात्मक हो और जिससे स्वाभिमान तथा श्रद्धा के भाव जागें। केवल किताबें पढ़ा देने से कोई लाभ नहीं। हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है, जिससे चरित्र-निर्माण हो, मानसिक शक्ति बढ़े, बुद्धि विकसित हो और देश के युवक अपने पैरों पर खड़े होना सीखें। आज हमें आवश्यकता है वेदान्तयुक्त पाश्चात्य विज्ञान की, ब्रह्मचर्य के आदर्श और श्रद्धा तथा आत्मविश्वास की।

"स्वामी विवेकानन्द के अनुसार यह प्रवृत्ति उसकी बुद्धि के विकास का मूल आधार है। जिस व्यक्ति में नई बातों को जानने की जितनी अधिक जिज्ञासा, उत्सुकता और योग्यता होती है वह उतना ही अधिक ज्ञानी बन जाता है। अतः शिक्षण-संस्थाओं में बालकों की स्वाभाविक कुतुहलवृत्ति का समुचित समाधान अनिवार्य है। प्रश्न करना, अनुसंधान करना, विश्लेषण करना तथा रचना करना- यह छात्रों की दिनचर्या में होनी चाहिये। उनमें अचेतन रूप से वैज्ञानिकों की प्रवृत्ति प्राप्त करने में सहयोग देना चाहिए। इसके अतिरिक्त आध्यात्मिक जानकारी के लिए छात्रों को बौद्धिक जिज्ञासा का प्रोत्साहन करना चाहिए, ताकि वह स्वयं और विश्व को समझ सकें। प्रत्येक छात्र में प्राकृतिक रूप से अनुकरण तथा कल्पना की शक्ति विद्यमान होती है। उन्हें कलात्मक बनाने के लिए उनको इन शक्तियों का विकास आवश्यक है।"<sup>3</sup>

यजुर्वेद का मंत्र है-

इषमूर्ज मादव। तथा त्वचा वयं संधानं जेष्य।

अर्थात् छात्रवर्ग को ऐसा उपदेश देना चाहिए की वे अपने जीवन के लिए 'इष' उन्नादि योगों की पुवकल सामग्री प्राप्त कर सकें और प्रत्येक प्रकार से बलवान एवं तेजस्वी बन कर अपनी स्थिति को सुदृढ़ रख सकें। जिस विद्या को प्राप्त करके विद्यार्थीजन जीवन निर्वाह तक न कर सकें तथा निर्बल और शक्तिशून्य होकर रोगग्रस्त और अभाव पीड़ित रहे— वह शिक्षा व्यर्थ है। विद्या के लिए अर्थकारी होना परमावश्यक है। साहित्य शिक्षा के साथ यदि कला—कौशल को भी संमिश्रण रखा जाए और स्नातकों को किसी शिल्प को ज्ञान करा दिया जाए तो आर्थिक समस्याओं का सहज की समाधान हो सकता है।  
**पुनश्च** ऋग्वेद में निर्देश किया गया है—

रामस्वामुपसृजा । तथा  
आ ना प्रयच्छतं रयि विश्वायुपोसस्मम् ।  
उरू गायर्माध धोहि अवो नः ।  
द्रविणं च द्यत्तम् । अरिष्टेर्नः पथिभि पारयंत ।

अर्थात् धन के अभाव में कोई योजना पूरी नहीं हो सकती। नदी के धारा के समान धन हमारे समक्ष सदा बहता रहे। धन प्राप्ति के लिए परिश्रम तथा कर्मठता अनिवार्य है। धन भाग्य से नहीं, परिश्रम से मिलता है।

“स्वामी जी तत्कालीन शिक्षा—प्रणाली से दुखी थे। उनका विचार था कि उस समय की शिक्षा मनुष्य में कोई गुण उत्पन्न नहीं करती। वह मनुष्य बनाने वाली शिक्षा हैं ही नहीं। उसमें कोई तत्त्व की बात दी ही नहीं जाती। उस शिक्षा को स्वामी जी ने निषेधात्मक शिक्षा कहा है। अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली में निषेधों पर बल दिया जाता था। उसमें हाथ—पैर से काम न करने पर, मातृ—भाषा के प्रयोग न करने पर, मौलिकता प्रदर्शित न करने पर बल था। अभावत्मक शिक्षा व्यक्ति को पंगु बना देती है, उसकी मौलिकता को कुंठित कर देती है और उसमें मनुष्यत्व के गुणों का विकास नहीं करती।”<sup>4</sup>

स्वामी जी के अनुसार शिक्षा को मात्र सूचना तक नहीं सीमित करना चाहिए तमाम असम्बद्ध जानकारियों को मस्तिष्क में ढूँस देने से कोई लाभ नहीं। सूचना को अपने में कोई महत्त्व नहीं है। जो विचार जीवन—निर्माण में सहायक हों उनकी अनुभूति करना आवश्यक है। स्वामी जी के अनुसार केवल कुछ विचारों को रटकर डिग्री प्राप्त कर लेना शिक्षा नहीं है। विदेशी भाषा में कुछ रटकर अपने को शिक्षित समझने की भूल शिक्षा को जानकारी या सूचना तक सीमित रखने का परिणाम है। स्वामी जी के शब्दों में, “ यदि तुम केवल पाँच ही परखे हुए विचार आत्मसात् कर उनके अनुसार अपने जीवन और चरित्र का निर्माण कर लेते हो, तो तुम एक पूरे ग्रन्थालय को कण्ठस्थ करने वाले की अपेक्षा अधिक शिक्षित हो। यदि शिक्षा को अर्थ जानकारी ही होता, तब तो पुस्तकालय संसार में सबसे बड़े सन्त हो जाते और विश्वकोष के महान् ऋषि बन जाते।

“लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार का ज्ञान मानव—मन में निहित रहता है। यह प्रायः ढका रहता है। जब धीरे—धीरे आवरण हटता है तो कहा जाता है व्यक्ति सीख रहा है। जिसके मन से आवरण पूर्णतः हट जाता है उसे सर्वज्ञ कहा जाता है। मन में ज्ञान ऐसे ही निहित है जैसे चकमक पत्थर में चिनगारी। आत्मा से ही सारा

ज्ञान उद्भूत होता है। अतः कोई किसी को ज्ञान नहीं दे सकता, न ही कोई किसी को सिखा सकता है। गुरु केवल प्रेरणा दे सकता है। अतः यह कहना अधिक उपयुक्त है। किस बालक स्वयं अपने को सिखाता है। ज्ञान या दिव्य ज्योति इस प्रकार ढकी रहती है जैसे लोहे की सन्दूक में बन्द दीपक। पवित्रता एवं त्याग भावना से आवरण हटता है और अवरोधक समाप्त होता है।<sup>5</sup>

### शैक्षिक उद्देश्य:-

बालक को इस प्रकार की शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे उसका चरित्र बने, बुद्धि का विकास हो, मानसिक शक्ति बढ़े और वह अपने पैरों पर खड़ा हो सके। मन में समस्त झुकावों और सभी प्रकार की प्रकृतियों का समवाय चरित्र है सुख-दुख व्यक्ति की आत्मा पर अपनी छाप छोड़ जाते हैं। इन सभी प्रकार की छापों की समष्टि चरित्र है। विचारों से ही मनुष्य बनता है।

जब हम विचार करते हैं तो प्रत्येक विचार हमारे शरीर पर कुछ असर डाल देता है। जिस प्रकार हथौड़े की हलकी चोट भी लोहे पर प्रभाव डालती है। विचार में सजीवता होती है। वाणी इतनी सजीव नहीं होती जिसमें सजीव विचार होते हैं। अतः शिक्षा द्वारा अच्छे विचारों का निर्माण होना चाहिए। सुख-दुख दोनों का चरित्र की दृष्टि से महत्त्व है। कभी-कभी दुख अधिक सबल शिक्षक होता है। भलाई बुराई में जुदाई से कभी-कभी अधिक शिक्षा मिलती है। महापुरुषों की जीवनियाँ हमें बताती हैं कि महापुरुषों ने सुख की अपेक्षा दुख, सम्पत्ति की अपेक्षा दरिद्रता एवं प्रशंसा की अपेक्षा आघात से ही अधिक शिक्षा ग्रहण की है। आध्यात्मिक अन्तज्योति तो तभी प्रकाशित होती है जब व्यक्ति के हृदय में वेदना की टीस होती है और चारों ओर से तुफानों के बादल उमड़ पड़ते हैं। उसमें बालक का प्रत्येक विचार व कार्य उसके मन पर एक संस्कार छोड़ जाता है। चरित्र का निर्माण इन्हीं संस्कारों से होता है। बुरे कर्म बुरे संस्कार छोड़ते हैं। जो व्यक्ति सदा बुरे शब्द सुनता है, बुरे विचार सोचता है, बुरे कार्य करता है, उसका मन बुरे संस्कारों से परिपूर्ण हो जाता है और वह इन कुसंस्कारों के हाथों का खिलौना बन कर बुरे कर्म कर डालता है।

इसी प्रकार अच्छे शब्द सुनने वाला, अच्छे विचार सोचने वाला अच्छे संस्कार से युक्त हो जाता है। और इच्छा न होते हुए भी वह सत्कार्य करने के लिए विवश हो जाता है। जब व्यक्ति संस्कार वश अच्छे कार्य करता है तभी उसका चरित्र गठित कहा जाएगा। यह चरित्र गठन शिक्षा का उद्देश्य है।

“चरित्र गठन के लिए महान् कार्यों का ही महत्त्व नहीं है बल्कि बहुत छोटे-छोटे कार्यों का भी महत्त्व है। अतः चरित्र गठन अच्छा तब कहा जाएगा जब व्यक्ति सदा सभी दशाओं में महान् कार्य करता रहता है। मन पर पड़े हुए संस्कार आदत के रूप में परिणत हो जाते हैं। आदत को दूसरा स्वभाव कहा जाता है पर स्वामी विवेकानन्द के अनुसार वह प्रथम और समस्त स्वभाव है न कि दूसरा। अतः बुरी आदत को उसकी विरोधी आदत द्वारा सुधारा भी जा सकता है। सदा अच्छे कार्य करने से, पवित्र विचार करने से बुरी आदतों को वश में किया जा सकता है। बार-बार अभ्यास करने से चरित्र का गठन और पुनर्गठन किया जा सकता है।”<sup>6</sup>

अतः यह कहा जा सकता है कि बुराइयों का कारण मनुष्य में ही निहित है, किसी दैवी सत्ता में नहीं। मनुष्य रेशम के कीड़े के समान है। वह अपने आप से ही सूत निकाल कर कोष बना लेता है और फिर उसी में बन्दी हो जाता है। कर्म का जाल हमारा अपना बुना हुआ है। अतः इस जाल को बाहर की सहायता से नहीं नष्ट किया जा सकता। सहायता तो अन्दर से मिलती है।

हम दुर्बल हैं इसलिए त्रुटि करते हैं और हमारी दुर्बलता का कारण हमारा अज्ञान है। हमें अज्ञानी कोई बनाता नहीं, हम स्वयं ही अज्ञान के कारण हैं। अपनी इच्छा शक्ति से हम अज्ञान पर विजय पा सकते हैं। स्वामी जी कहते हैं "हम अपनी आँखों को अपने हाथों से ढक लेते हैं और 'अँधेरा' 'अँधेरा' है, कहकर रोते हैं। हाथ हटा लो प्रकाश ही प्रकाश है। मनुष्य की आत्मा स्वभाव से ही स्वयं प्रकाश है। अतः हमारे लिए प्रकाश का अस्तित्व सदा ही है। आधुनिक वैज्ञानिक लोग क्या कहते हैं, क्या तुम नहीं सुनते? कमविकास का कारण क्या है— इच्छा। जीवधारी कुछ करना चाहता है, परन्तु परिस्थिति को अनुकूल नहीं पाता, इसलिए नये शरीर का निर्माण कर लेता है। यह कौन निर्माण करता है? स्वयं वही जीवधारी, उसकी इच्छा शक्ति। अपनी इच्छा शक्ति का प्रयोग करते रहो और वहीं तुम्हें उपर उठाती जायगी। इच्छाशक्ति सर्वशक्तिमान है। तुम पूछ सकते हो, यदि वह सचमुच सर्वशक्तिमान है, तो फिर मैं सब कुछ क्यों नहीं कर सकता? पर तुम तो केवल अपनी क्षुद्र आत्मा के सम्बन्ध में सोच रहे हो। अपनी निम्नतम जीवाणु की अवस्था से लेकर मनुष्य शरीर तक इस सारी जीवन—श्रृंखला पर नजर डालो। यह सब किसने बनाया? स्वयं तुम्हारी इच्छा शक्ति ने। क्या तुम उसकी सर्वशक्तिमत्ता को अस्वीकार कर सकते हो? जिससे तुम्हें इतने ऊँचे तक उठाया, वह तुम्हें और भी ऊँचा ले जा सकती है। आवश्यकता है चारित्र्य की, इच्छा शक्ति को सबल बनाने की।" हमारी शिक्षा का उद्देश्य यह होना चाहिए कि हमारी इच्छा शक्ति सबल बने और उसके माध्यम से हम चरित्र का उन्नयन कर सकें।

हमारी शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य का निर्माण करना होना चाहिए। सारी शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य मनुष्य का विकास करना है। जिस प्रशिक्षण से मनुष्य की इच्छा शक्ति का प्रकाश फलदायी हो, वही शिक्षा है। हम मनुष्य बनाने वाले सिद्धान्त ही चाहते हैं।

"शिक्षा का उद्देश्य केवल नौकरी प्राप्त करना नहीं होना चाहिए। नौकरी को शिक्षा का उद्देश्य मानने वाले छात्रों को सम्बोधित करते हुए वे कहते हैं, " तुम्हारी शिक्षा का उद्देश्य क्या है? या तो मुंशीगीरी मिलना, या वकील हो जाना, या अधिक से अधिक डिप्टी मजिस्ट्रेट बन जाना; जो मुंशीगीरी का ही दूसरा रूप है— बस यही न? इससे तुमको या तुम्हारे देश को क्या लाभ होगा? आँखे खोलकर देखो, जो भारतखण्ड अन्न का अक्षय भण्डार रहा है, आज वही उसी अन्न के लिए कैसी करुण पुकार उठ रही है। क्या तुम्हारी शिक्षा इस अभाव को पूर्ति करेगी? वह शिक्षा जो जनसमुदाय का जीवन—संग्राम के उपयुक्त नहीं बनाती, जो उनकी चारित्र्य—शक्ति का विकास नहीं करती, जो उनमें भूत—दया का भाव और सिंह का साहस पैदा नहीं करती, क्या उसे भी हम 'शिक्षा' का नाम दे सकते।"

शिक्षा द्वारा छात्रों में श्रद्धा की निष्पत्ति होनी चाहिए। स्वामी जी श्रद्धा को बहुत महत्व देते हैं और भारतीय शिक्षा प्रणाली में 'श्रद्धा' के अभाव से वे दुखी थे। उनके मतानुसार श्रद्धा से समस्त जगत क्रियाशील होता है और श्रद्धा के द्वारा ही मनुष्य के

जीवन को समृद्धिशाली बनाया जा सकता है। श्रद्धा के अभाव में मनुष्य आधारविहीन हो जाता है। श्रद्धा का उन्मूलन करना मनुष्य को तपन के गर्त में ढकेलना है। आत्मज्ञान द्वारा व्यक्ति में श्रद्धा उत्पन्न होती है। आत्मज्ञान से तात्पर्य बाह्य आडम्बरपूर्ण जीवन बिताना नहीं है। केश, कमण्डल, दण्ड से आत्मज्ञानी नहीं बना जाता। गिरिकन्दराओं में निवास करना भी इसके लिए आवश्यक नहीं है। इसका तात्पर्य है अपनी अन्तर्निहित सुप्त शक्तियों का ज्ञान प्राप्त करना। इसके लिए स्वयं पर दृढ़ विश्वास रखना आवश्यक है। जीवन के सभी पक्षों से संबंध रखने के कारण स्वामी विवेकानन्द द्वारा उपस्थापित शिक्षा दर्शन में अनेक व्यावहारिक उद्देश्यों की विवेचनाएँ हैं। यथा—

**(क) जीविकोपार्जन संबंधी उद्देश्य —**

इस उद्देश्य का अर्थ यह है कि शिक्षा बालक को बड़े होने पर जीविकोपार्जन के योग्य बनाए। यदि शिक्षा यह कार्य नहीं करती है तो वह व्यर्थ है। यदि वह व्यक्ति की भोजन, वस्त्र और मकान की मूल आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं करती है, तो यह निरर्थक है। यही कारण है कि भारतीय जीवन शैली में अर्थ को एकय पुरुषार्थ के रूप में स्वीकृति प्राप्त है। वस्तुतः यह स्वीकार करनी पड़ेगी कि यदि हम भौतिक, नैतिक और मानसिक प्रगति चाहते हैं तो हमें अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को सबसे पहले संतुष्ट करना पड़ेगा। यही कारण है कि अर्थोपार्जन को स्वामी विवेकानन्द शिक्षा का एक महत्वपूर्ण आदर्श मानते हैं। अर्थोपार्जन के द्वारा ही मनुष्य आत्मनिर्भर बनता है।<sup>8</sup>

**(ख) सांस्कृतिक उद्देश्य :-**

“शिक्षा के सांस्कृतिक उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए स्वामी विवेकानन्द कहते हैं— “मैं शिक्षा के साहित्य का पक्ष के बजाय सांस्कृतिक पक्ष को अधिक महत्व देता हूँ। सांस्कृतिक बोध के द्वारा ही बच्चों को बोलने, बैठने, चलने, कपड़े पहनने और छोटे से छोटे कार्य एवं व्यवहार में अपनी संस्कृति को व्यक्त करना चाहिए। स्वामी विवेकानन्द लिखते हैं “Education aims at making us into civilized human being conscious of our moral and social responsibilities. We must know the world in which we live physical, organic and social. We must have an idea of the general plan of the universe and the search for truth. When we attain truth our burdens are lightened and our difficulties are diminished.”<sup>8</sup>

इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द के अनुसार संस्कृति मानसिक कार्य का परिणाम नहीं है। यह कोई यांत्रिक प्रक्रिया भी नहीं है। वस्तुतः यह आत्मा का गुण है, जो मानव व्यवहार के प्रत्येक पहलू में पाया जाता है।

**(ग) सामंजस्यपूर्ण विकास का उद्देश्य —**

“इस उद्देश्य का अर्थ है कि बच्चों की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों को इस प्रकार विकसित किया जाए कि उसका सामंजस्यपूर्ण विकास हो। स्वामी विवेकानन्द लिखते हैं— “शिक्षा से मेरा अभिप्राय है बालक और मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा में पाए जाने वाले सर्वोत्तम गुणों को चतुर्मुखी विकास। सच्ची शिक्षा वही है जो बालकों को आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक शक्तियों को व्यक्त तथा प्रेरित करती है। “ स्वामी विवेकानन्द का मानना है कि यदि हृदय को सच्चा



प्रशिक्षण नहीं दिया जाता है तो मानसिक प्रशिक्षण बेकार हो जाता है। इसलिए उन्होंने हृदय के प्रशिक्षण को मस्तिष्क की संस्कृति को हृदय के संस्कृति के अधीन होना चाहिए। हृदय की शिक्षा संवेगों और आवेगों को जगाकर प्राप्त की जा सकती है। इसके लिए ड्राइंग, संगीत और हस्तशिल्पों को अध्ययन भी होना चाहिए।<sup>9</sup>

मस्तिष्क और हृदय के विकास के साथ-साथ शरीर के विकास पर भी बल देते हैं। उन्हें इस बात में दृढ़ विश्वास है कि मस्तिष्क और हृदय को तभी शिक्षित किया जा सकता है जब शरीर के अंगों को उचित व्यायाम और प्रशिक्षण दिया जाए। स्वामी विवेकानन्द का विश्वास है कि जबतक मस्तिष्क और शरीर का विकास आत्मा की जागृति के साथ-साथ नहीं होगा, तब तक पहले प्रकार का विकास एकांगी सिद्ध होगा। पूर्ण मनुष्य का निर्माण करने के लिए इन तीनों का उचित और सामंजस्यपूर्ण मिश्रण आवश्यक है।

#### (घ) नैतिक या चारित्रिक विकास का उद्देश्य –

“हरबर्ट का कथन है कि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है— नैतिक विकास। स्वामी विवेकानन्द भी चरित्र निर्माण को शिक्षा का मूलभूत उद्देश्य मानते हैं। उनका कहना है कि समस्त ज्ञान का लक्ष्य चरित्र का निर्माण करना होना चाहिए। व्यक्तिगत पवित्रता समस्त चरित्र निर्माण का आधार होना चाहिए। चरित्र के बिना शिक्षा और पवित्रता के बिना चरित्र व्यर्थ है।”<sup>10</sup>

#### (ङ) मुक्ति का उद्देश्य—

“स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा का एक मुख्य उद्देश्य व्यक्ति की मुक्ति है— “सा विद्या या विमुक्तये” अर्थात् शिक्षा या विद्या वही है, जो मुक्ति करती है गांधीजी ने इसके दो अर्थ बताए हैं। उनके अनुसार मुक्ति का अर्थ वर्तमान जीवन में भी सब प्रकार की क्षमता से स्वतंत्रता प्राप्त की जा सकती है। जब तक मनुष्य राजनैतिक, आर्थिक और मानसिक रूप से स्वतंत्र नहीं है, उसे पूर्णतः मुक्त कहना सम्भव नहीं है। जबतक मनुष्य इनमें से किसी भी बेड़ी में बंधा हुआ है, तबतक उसकी प्रगति असंभव है। अतः शिक्षा का उद्देश्य है— “ मनुष्य को सभी प्रकार की दासता से मुक्त करना।” दूसरा अर्थ जिस पर स्वामी विवेकानन्द विशेष बल देते हैं तथा जिसे गांधीजी भी स्वीकार करते हैं। वह यह है कि शिक्षा संस्थाओं में प्राप्त किए जानेवाले ज्ञान को आध्यात्मिक स्वतंत्रता का दिखाना चाहिए और वहाँ तक पहुँचना चाहिए।” तात्पर्य यह है कि शिक्षा द्वारा सांसारिक बंधनों से आत्मा की मुक्ति उपेक्षित है। अतएव शिक्षा का यह भी उद्देश्य होना चाहिए कि आत्मा को उच्चतर जीवन की ओर अग्रसर करना। स्वामी विवेकानन्द लिखते हैं— “The way to attain the consciousness of the divine in us is by brahmchary, disciplined liking..... All life is an adventure to attain the fulfillment of the self, its integration.”<sup>11</sup>

#### (च) शिक्षा का सर्वोच्च उद्देश्य—

शिक्षा के सभी तत्कालिक एवं व्यावहारिक उद्देश्य इस उद्देश्य से भिन्न हैं। मनुष्य का नैतिक और पूर्ण विकास इसलिए किया जाना चाहिए, जिससे कि वह अंतिम वास्तविकता को जान सके और अपने को अनवर शरीर का भाग बना सके। यही अंतिम ध्येय है जिसको प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को प्रयत्न करना चाहिए।

### शिक्षण-विधि:-

“स्वामी विवेकानन्द को तत्कालीन शिक्षण-विधि में कोई आस्था नहीं थी। उनके अनुसार ज्ञान की प्राप्ति का केवल एक ही मार्ग है और वह है ‘एकाग्रता’। मन की एकाग्रता द्वारा ही शिक्षण हो सकता है, किसी अन्य विधि द्वारा नहीं। रसायन शास्त्री अपनी प्रयोगशाला में मन की सारी शक्तियों को एकाग्र करके ही सफलता प्राप्त करता है, ज्योतिषी एकाग्रता द्वारा ही दूरदर्शी यन्त्र के माध्यम से तारागणों का निरीक्षण करता है। “चाहे विद्वान अध्यापक हो, चाहे मेधावी छात्र हो, चाहे अन्य कोई भी हो, यदि वह किसी विषय को जानने की चेष्टा कर रहा है तो उसे उपर्युक्त प्रथा से ही काम लेना पड़ेगा।”<sup>12</sup>

शैक्षिक उपलब्धियाँ एकाग्रता की मात्रा पर निर्भर हैं। एकाग्रता जितनी अधिक होगी- ज्ञान भी उतना ही अधिक प्राप्त होगा। एकाग्रचित होकर चर्मकार जूता अच्छा साफ करेगा, रसोइयाँ भोजन अच्छा बनाएगा, अर्थोपार्जक पैसा अधिक कमाएगा, ईश्वरोपासक आराधना अधिक अच्छी करेगा।

मनुष्य और पशु में भेद ही एकाग्रता को लेकर है। पशु में यह शक्ति कम होती है, मनुष्य में अधिक। निम्नतर मनुष्य में यह शक्ति कम है और उच्चतम पुरुष में अधिक। मनुष्यों में भेद इसी शक्ति के आधार पर है।

शिक्षा की सफलता इसी पर निर्भर है। कला, संगीत आदि में कुशलता का आधार ही एकाग्रता है। एकाग्रता शिक्षा की कुंजी है। छात्र का मन यदि इधर-उधर भटकता रहेगा तो उसके हाथ कुछ नहीं लगेगा। इस समय छात्रों की शक्ति बहुत नष्ट हो रही है। ध्यान का अभ्यास करने से मानसिक एकाग्रता प्राप्त होगी। विषय-सामग्री का संग्रह शिक्षा नहीं है, एकाग्रता का विकास शिक्षा है। एकाग्रता ऐसा साधन या यन्त्र है जिसकी पूर्णता प्राप्त हो जाने पर बालक इच्छानुसार अनेक विषयों का संग्रह स्वतः कर सकता है।

एकाग्रता की शक्ति प्राप्त करने के लिए ब्रह्मचर्य से बौद्धि एवं आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है। वासनाओं को वश में करना चाहिए। काम शक्ति को आध्यात्मिक शक्ति में रूपान्तरित कर देना चाहिए। ब्रह्मचर्य से स्मृति शक्ति का विकास होता है, प्रबल कार्य शक्ति प्राप्त होती है, अमोघ इच्छा शक्ति का विकास होता है, मानव जाति अद्भुत प्रभुता मिल जाती है और पवित्रता का भाव जाग्रत होता है। अतः बालकों को ब्रह्मचर्य को अभ्यास करना चाहिए।

सीखने में स्वाभाविकता का महत्त्व है अतः बालक में ज्ञान को ढूँढना नहीं चाहिए। उसे पर्याप्त स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। अनुचित दबाव नहीं डालना चाहिए। बालक को सिंह बनने दीजिए, उसे बहुत अधिक परतन्त्र न बनाइए। बालक को सुधारने का या सिखाने दम्भ व्यर्थ है। उसे स्वाधीन करिये और उसे स्वयं सीखने के लिए प्रेरित करिए। स्वामी जी के शब्दों में, “तुम किसी बालक को शिक्षा देने में उसी प्रकार असमर्थ हो, जैसे कि किसी पौधे को बढ़ाने में। पौधा अपनी प्रकृति का विकास अपने आप ही कर लेता है। बालक भी अपने आपको शिक्षित करता है। पर हाँ, तुम उसे अपने ही ढंग से आगे बढ़ने में सहायता दे सकते हो, तुम जो कुछ कर सकते हो, और बस ज्ञान अपने स्वाभाविक रूप से प्रकट हो जायेगा। जमीन को कुछ पोली बना दो ताकि उसमें से उगना आसान हो जाय। उसके चारों ओर घेरा बना दो और देखते रहो कि कोई उसे

नष्ट न कर दे। उस बीज से उगते हुए पौधे की शारीरिक बनावट के लिए मिट्टी, पानी और समुचित वायु का प्रबन्ध कर सकते हो, और बस यहीं तुम्हारा कार्य समाप्त हो जाता है। वह अपनी प्रकृति के अनुसार जो भी आवश्यक हो ले लेगा। वह अपनी प्रकृति से ही सबको पचा बैठेगा। बस ऐसा ही बालक की शिक्षा के बारे में है। बालक स्वयं अपने आपको शिक्षित करता है।

“स्वामी जी द्वारा समर्थित शिक्षण-विधि में पुस्तकीय शिक्षा की प्रधानता नहीं है। केवल पुस्तकों के अध्ययन को वे शिक्षा मानने को तैयार नहीं थे। पुस्तकों का अध्ययन किया जाए इस प्रकार नहीं जिस प्रकार आजकल किया है। पुस्तकों को पढ़ने यदि एकाग्रता नहीं विकसित होती, श्रद्धा का विकास यदि नहीं होता और छात्रों में आत्मविश्वास यदि नहीं जाग्रत होता तो उन्हें पढ़ना व्यर्थ है।”<sup>13</sup>

स्वामी विवेकानन्द के विचारों पर प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति का स्पष्ट छाप है। यद्यपि यह भी सत्य है कि वे पाश्चात्य शिक्षण पद्धति की तकनीकी पक्ष को स्वीकार करने में अत्यन्त ही उत्साहित है। उपनिषद् से विवरण प्रस्तुत करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने अध्यापक को बालकों में विद्यार्थी जीवन सम्बन्धी गुणों को उत्पन्न करने के लिए निम्नलिखित सुझाव रखते हैं— शिक्षक विद्यार्थियों से यह कहे “मेरे बच्चों— सदा सत्य बोलो। सदाचारी बनो, पढ़ने-पढ़ाने के लिए सदा तत्पर रहो।

#### संदर्भ स्रोत:—

1. डॉ० बी.एन.सील, दि लाइफ ऑफ विवेकानन्द, अलमोडश अद्वैत-पृ०-92
2. स्वामी विवेकानन्द साहित्य, चौथा खण्ड, पृ०-311
3. स्वामी विवेकानन्द साहित्य, खण्ड-1, पृ०-87
4. ए.बी.कीथ, Religion and Philosophy of the Veda and Upanishad, पृष्ठ 584-85,
5. आर.डी.रानाडे, Constructive Survey of Upanishadic Philosophy, पृष्ठ 139 (पूना 1926) ,
6. स्वामी निर्वेदानन्दजी, Swami Vivekananda on India and Her Problems, रामकृष्ण मठ, नागपुर, पृ०-88
7. स्वामी निर्वेदानन्दजी (1995), चतुर्थ संस्करण, विवेकानन्द साहित्य (दस खण्ड), रामकृष्ण मठ, अद्वैत आश्रम, कलकत्ता, पृ०-55
8. रोमा रोलां , लाइफ ऑफ विवेकानन्द, पृ०-191,
9. बी. एन.दत्त, Swami Vevekananda, Patriot-Prophet, पृष्ठ 369-70,
10. Complete Works Swami Vevekanada, जिल्द 2, पृ०-33
11. Complete works, जिल्द 4, पृष्ठ 327-30,
12. The Life of Swami Vevekananda by his Eastern and Western Disciple पृ०-28
13. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा, “The Relation of Tilak and Vevekananda', The Vedanta Desari, नवम्बर 1958, पृष्ठ 122-24